SNEH TEACHERS TRAINING COLLEGE, JAIPUR
"Foster Emotional Intelligence in Youth Through Education" (ICFEIYE-2024)
DATE: 15 April 2024
International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
Multidisciplinary, Indexed, Double-Blind, Open Access, Peer-Reviewed, Refereed-International Journal, Impact factor (SJIF) = 7.938

श्रीमद्भगवद्गीता में सांख्ययोग एवं चिंतनशील प्रक्रियाओं और ध्यान का मार्ग का अध्ययन

नविता देवी, पी–एच.डी. (छात्रा), जे.जे.टी.विश्वविद्यालय
डॉ. सुषमा मौर्या,शोध निर्देशिका, जे.जे.टी.विश्वविद्यालय

शोध आलेख सारांश –

श्रीमद्भगवद्गीता हमारे धर्मग्रथों का एक अत्यन्त तेजस्व और निर्मल हीरा है। पिंड–ब्रह्माण्ड–ज्ञानसहित आत्मविद्या के गूढ़ और पवित्र तत्वों को थोड़े में और स्पष्ट रीति से समझा देने वाला, उन्हीं तत्वों के आधार पर मनुष्य मात्र के पुरूषार्थ की, अर्थात् आध्यात्मिक पूर्णावस्था की पहचान करा देने वाला, भक्ति और ज्ञान का मेल करा दे, इन दोनों का शास्त्रोक्त व्यवहार के साथ संयोग करा देने वाला और इसके द्वारा संसार से त्रस्त मनुष्य को शांति देकर उसे निष्काम कर्त्तव्य के आचरण में लगाने वाला गीता के समान बालबोध ग्रंथ, समस्त संसार के साहित्य में भी नहीं मिल सकता।

मूल शब्द – सांख्य योग एवं ध्यान।

भूमिका –

भगवद्गीता को केवल काव्य की ही दृष्टि से यदि परीक्षा की जाये तो भी यह ग्रंथ उत्तम काव्यों में गिना जा सकता है, क्योंकि इसमें आत्मज्ञान के अनेक गूढ़ सिद्वान्त ऐसे लिखे गये हैं, कि वे सभी व्यक्तियों को एक समान सुगम है, इसमें ज्ञानयुक्त भक्तिरस भी भरा पड़ा है। जिस ग्रंथ में समस्त वैदिक धर्म का सार स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् की वाणी से संग्रहित किया है, उसकी योग्यता का वर्णन कैसे किया जाये? महाभारत की लड़ाई समाप्त होने पर एक दिन श्रीकृष्ण और अर्जुन प्रेमपूर्वक बातचीत कर रहे थे। उस समय अर्जुन के मन में इच्छा हुई कि श्रीकृष्ण से एक बार फिर गीता सुने। तुरन्त अर्जुन ने विनती की ''महाराज! आपने जो उपदेश मुझे युद्ध के आरम्भ में दिया था उसे मैं भूल गया हूँ। कृपा करके फिर एक बार उसे बतलाइये।'' तब श्रीकृष्ण भगवान् ने उत्तर दिया कि – उसे ''उस समय मैंने अत्यंत योगयुक्त अंतःकरण से उपदेश किया था। अब सम्भव नहीं कि मैं वैसे ही उपदेश फिर कर सकूँ।'' सच पूछें तो भगवान् श्रीकृष्ण के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है, परन्तु उनके उक्त कथन से यह बात अच्छी तरह मालूम हो सकती है कि गीता का महत्व कितना है। यह ग्रंथ, वैदिक धर्म के भिन्न–भिन्न संप्रदायों में, वेद के समान, आज करीब ढ़ाई हजार वर्षो से सर्वमान्य तथा प्रमाण स्वरूप हो गया है, इसका कारण भी उक्त ग्रंथ का महत्व ही है। इसीलिए गीता–ध्यान में इस स्मृतिकालीन ग्रंथ का अलंकार–युक्त, परन्तु यथार्थ वर्णन इस प्रकार किया गया है–

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

अर्थात् जितने उपनिषद् हैं वे मानों गायें हैं, श्रीकृष्ण स्वयं दूध दुहने वाले (ग्वाला) हैं, बुद्धिमान् अर्जुन (उन गौओं को पन्हाने वाला) भोक्ता बछड़ा हैं, और जो दूध दूहा गया वही मधुर गीतामृत है। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं कि हिन्दुस्तान की सब भाषाओं में इसके अनेक अनुवाद, टीकाएँ और विवेचन हो चुके हैं, परन्तु जबसे पश्चिमी विद्वानों को संस्कृत भाषा का ज्ञान होने लगा है, तब से ग्रीक, लैटिन, जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि यूरोप की भाषाओं में भी इसके अनेक अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। तात्पर्य यह है कि इस समय यह अद्वितीय ग्रंथ समस्त संसार में प्रसिद्ध है।

इस ग्रंथ में सब उपनिषदों का सार आ गया है। इसी से इसका पूरा नाम ''श्रीमदभगवद्गीता–उपनिषत्'' है। गीता के प्रत्येक अध्याय के अंत में जो अध्याय समाप्ति–दर्शक संकल्प है, उसमें ''इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे'' इत्यादि शब्द हैं। यह संकल्प यद्यपि मूलग्रंथ (महाभारत) में नहीं है, तथापि यह गीता की सभी प्रतियों में पाया जाता है। इससे अनुमान होता है कि गीता की किसी भी प्रकार की टीका हो जाने के पहले ही, जब महाभारत से गीता नित्यपाठ के लिए अलग निकाल ली गयी, तभी से उक्त संकल्प का प्रचार हुआ होगा।

'उपनिषत्' शब्द हिन्दी में पुल्लिंग माना गया है, परन्तु वह संस्कृत में स्त्रीलिंग है। इसलिए ''श्रीभगवान से गाया गया अर्थात् कहा गया उपनिषद्'' ये दो विशेषण–विशेष्यरूप स्त्रीलिंग शब्द प्रयुक्त हुए हैं। ग्रंथ एक ही है फिर भी सम्मान के लिए ''श्रीमद्भगवद्गीतासुपनिषत्सु'' ऐसा सप्तमी के बहुवचन का प्रयोग किया गया है। शंकराचार्य के भाष्य में भी इस ग्रंथ को लक्ष्य करके ''इति गीतासु'' यह बहुवचनान्त प्रयोग पाया जाता है। परन्तु नाम को संक्षिप्त करने के समय आदरसुचक प्रत्यय, पद तथा अंतिम सामान्य जातिवाचक 'उपनिषत्' शब्द भी हटा दिया गया, जिससे ''श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषद्'' इन प्रथमा के एकवचनान्त शब्दों के बदले पहले 'भगवद्गीता' और फिर केवल 'गीता' ही संक्षिप्त नाम प्रचलित हो गया। ऐसा बहुत से संक्षिप्त नाम प्रचलित हैं, जैसे–कठ, छांदोग्य, केन इत्यादि। यदि 'उपनिषद्' शब्द मूल नाम में न होता तो 'भागवतम्', 'भारतम्', 'गोपीगीतम्' इत्यादि शब्दों के समान इस ग्रंथ का नाम भी 'भवगवद्गीतम' या केवल 'गीतम्' बन जाता, जैसा कि नपुंसकलिंग के शब्दों का स्वरूप होता है। परन्तु ऐसा हुआ नहीं और 'भगवद्गीता' या 'गीता' हुआ। यदि स्त्रीलिंग के शब्दों, अब तक बना रहा है, तब तक उसके सामने 'उपनिषत्' शब्द को नित्य अध्याहृत समझना ही चाहिए। अनुगीता की अर्जुन मिश्रकृत टीका में अनुगीता शब्द का अर्थ भी इसी रीति से किया गया है।

परन्तु सात सौ श्लोकों की भगवद्गीता को ही गीता नहीं कहते। अनेक ज्ञान–विषयक ग्रंथ भी गीता कहलाते हैं। उदाहरणार्थ महाभारत के शांतिपर्वांतर्गत मोक्ष पर्व के कुछ प्रकरणों को पिंगल गीता, शपांकगीता, मंकिगीता, बोध्यगीता, विचख्युगीता, हारित गीता, वृत्र गीता, पराशर गीता, हंस गीता कहते हैं। ''अश्वमेघ पर्व की अनुगीता के एक भाग का विशेषनाम 'ब्रह्मणगीता' है।'' इनके अतिरिक्त अवधूतगीता, अष्टावक्रगीता, ईश्वरगीता, उत्तरगीता, कपिलगीता, गणेशगीता, देवगीता, पांडवगीता, ब्रह्मगीता, भिक्षुगीता, रामगीता, व्यासगीता, शिवगीता, सूतगीता, सूर्यगीता इत्यादि अनेक गीताएँ प्रसिद्व

International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
Multidisciplinary, Indexed, Double-Blind, Open Access, Peer-Reviewed, Refereed-International Journal, Impact factor (SJIF) = 7.938

हैं।[3] इनमें से कुछ तो स्वतन्त्र रीति से निर्माण की गयी हैं और शेष भिन्न–भिन्न पुराणों में हैं। जैसे गणेशपुराण के अंतिम क्रीडाखण्ड के 138 से 148 अध्यायों में गणेशगीता कही गयी है। इसे यदि थोड़े हेर–फेर के साथ भगवद्गीता की नकल कहें तो कोई हानि नहीं। कूर्मपुराण के उत्तर भाग के पहले ग्यारह अध्यायों में ईश्वरगीता है। इसके बाद व्यासगीता का आरम्भ हुआ है। स्कंदपुराणांतर्गत सूतसंहिता के चौथे अर्थात् यज्ञवैभवखण्ड के उपरिभाग के आरम्भ (1 से 12 अध्याय तक) में ब्रह्मगीता है और इसके बाद के अध्यायों में सूतगीता है। यह तो हुई स्कंदपुराण की ब्रह्मगीता, दूसरी एक और ब्रह्मगीता है जो योगवासिष्ठ के निर्वाण प्रकरण के उत्तरार्ध (सर्ग 173 से 181 तक) में आ गयी है। यमगीताएँ तीन प्रकार की है। पहली विष्णुपुराण के तीसरे अंश के सातवें अध्याय में है। दूसरी, अग्निपुराण के तीसरे खण्ड के 381वें अध्याय में है, और तीसरा नृसिंहपुराण के आठवें अध्याय में है। यही हाल रामगीता का है। ''महाराष्ट्र में जो रामगीता प्रचलित है वह अध्यात्मरामायण के उत्तरकांड के पाँचवें सर्ग में है, और यह अध्यात्मरामायण ब्रह्मांडपुराण का एक भाग माना जाता है, परन्तु इसके अतिरिक्त एक दूसरी रामगीता ''गुरूज्ञान–वासिष्ठ–तत्त्वसारायण'' नामक ग्रंथ में है जो मद्रास की ओर प्रसिद्व है।''[4] यह ग्रंथ वेदान्त विषय पर लिखा गया है। इसमें ज्ञान, उपासना और कर्म–सम्बन्धी तीन कांड हैं। इसके उपासनाकांड के तृतीय पाद के पहले पाँच अध्यायों में सूर्यगीता है। कहते हैं कि शिवगीता पद्मपुराण के पातालखण्ड में है। पर दस पुराण की जो प्रति पूणे के आनन्दाश्रम में छपी है उसमें शिवगीता नहीं है। पंडित ज्वाला प्रसाद ने अपने 'अष्टादशपुराणदर्शन' ग्रंथ में लिखा है कि शिवगीता गौड़िया पद्मोत्तरपुराण में है। नारदपुराण में अन्य पुराणों के साथ–साथ, पद्मपुराण की भी जो विषयानुक्रमणिका दी गयी है, उसमें शिवगीता का उल्लेख पाया जाता है। श्रीमद्भागवतपुराण के ग्यारहवें स्कंध के तेरहवें अध्याय में हंसगीता और तेईसवें अध्याय में भिक्षुगीता कही गयी है। तीसरे स्कंध के कपिलोपाख्यान (अध्याय 23–33) को कई लोग 'कपिलगीता' कहते हैं, परन्तु 'कपिलगीता' नामक एक स्वतंत्र पुस्तक छपी है, जिसमें हठयोग का प्रधानतः वर्णन किया गया है। इसमें एक स्थान[5] पर जैन, जंगम और सूफी का उल्लेख है, जिससे कहना पड़ता है कि यह गीता मुसलमानी शासनकाल के बाद की होगी। भगवतपुराण के ही समान देवीभगवत में भी, सातवें स्कंध के 31 से 40 अध्याय तक एक गीता है, और देवी से कही जाने के कारण उसे देवीगीता कहते हैं। केवल भगवद्गीता ही का सार अग्निपुराण के तीसरे खण्ड के 380 वें अध्याय में, तथा गरूड़पुराण के पूर्वखण्ड के 242 वें अध्याय में दिया हुआ है। इसी तरह कहा जाता है, कि रामावतार में वसिष्ठ जी ने जो उपदेश रामचन्द्रजी को दिया, उसी को योगवासिष्ठ कहते हैं, परन्तु इस ग्रंथ के अन्तिम प्रकरण में 'अर्जुनोपाख्यान' भी शामिल हैं, जिसमें उस भगवद्गीता का सारांश दिया गया है, कि जिसे कृष्णावतार में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था। ''इस उपाख्यान में भगवद्गीता के अनेक श्लोक ज्यों का त्यों पाये जाते हैं।''[6] पुणे में छपे हुए पद्मपुराण में शिवगीता नहीं मिलती है, परन्तु उसके न मिलने पर भी इस प्रति के उत्तरखण्ड के 171 से 188 अध्याय तक भगवद्गीता के महात्म्य वर्णन है, और भगवद्गीता के प्रत्येक अध्याय के लिए महात्म्य वर्णन का एक अध्याय है और इसके सम्बन्ध में कथा भी कही गयी है। ''इसके अतिरिक्त वाराहपुराण में भी गीता महात्म्य है और शिवपुराण में तथा वायुपुराण में भी गीता–महात्म्य का होना बतलाया जाता है, परन्तु कलकता (वर्तमान में कोलकाता) से प्रकाशित वायुपुराण में वह नहीं मिलता।'' भगवद्गीता की छपी हुई पुस्तकों के आरम्भ में 'गीता ध्यान' नामक नौ श्लोकों का एक प्रकरण पाया जाता है। ''यह कहाँ से लिया गया है पता नहीं चलता, परन्तु इसका 'भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजाल' श्लोक थोड़े हेर फेर के साथ, हाल ही में प्रकाशित 'ऊरूभंग' नामक भास कविकृति नाटक के आरम्भ में दिया हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि उक्त ध्यान भास कवि के समय के अनन्तर प्रचार में आया होगा। यही कहना अधिक युक्तिसंगत होगा कि गीता–ध्यान की रचना भिन्न–भिन्न स्थानों से लिये हुए और कुछ नये बनाये हुए श्लोकों से की गयी है। भास का समय कवि कालिदास से पहले का है। इसलिये उसका समय कम–से–कम संवत् 435 (शक तीन सौ) से अधिक अर्वाचीन नहीं हो सकता।''

भगवद्गीता के कौन–से और कितने अनुवाद तथा कुछ हेरफेर के साथ कितनी नकलें, तात्पर्य और महात्म्य–पुराणों में मिलते हैं। इस बात का पता नहीं चलता कि अवधूत और अष्टावक्र आदि दो–चार गीताओं को कब और किसने स्वतन्त्र रीति से रचा, अथवा वे किस पुराण से ली गयी है। इन सब गीताओं की रचना तथा विषय–विवेचन को देखने से यही मालूम होता है उक्त ग्रंथों की रचना भगवद्गीता के जगप्रसिद्ध होने के बाद ही की है। ''इन गीताओं के सम्बन्ध में यह कहने से भी कोई हानि नहीं कि वे इसी लिये रची गयी है, कि किसी विशिष्ट पंथ या विशिष्ट पुराण में भगवद्गीता के समान एक–दो गीता के रहे बिना उस पंथ या पुराण की पूर्णता नहीं हो सकती थी।'' जिस तरह श्रीभगवान् ने भगवद्गीता में अर्जुन को विश्वरूप दिखाकर ज्ञान बतलाया है, उसी तरह शिवगीता, देवीगीता और गणेशगीता में भी वर्णन है। शिवगीता, ईश्वरगीता आदि में तो भगवद्गीता के अनेक श्लोक अक्षरशः पाये जाते हैं। यदि ज्ञान की दृष्टि से देखा जाये तो इन सब गीताओं में भगवद्गीता की अपेक्षा कुछ अधिक विशेषता नहीं है, भगवद्गीता में आध्यात्मज्ञान और कर्म का मेल कर देने की जो अपूर्व शैली है वह इनमें से किसी गीता में नहीं है। ''भगवद्गीता में पातंजलयोग अथवा हठयोग और कर्म त्यागरूप संन्यास का यथोचित वर्णन न देखकर, उसकी पूर्ति के लिए कृष्णार्जुन–संवाद के रूप में किसी ने उत्तरगीता बाद में लिख डाली है।'' अवधूत और अष्टावक्र आदि गीताएँ बिलकुल एकदेशीय है, क्योंकि इनमें केवल संन्यासमार्ग का ही प्रतिपादन किया गया है। यमगीता और पांडवगीता तो केवल भक्तिविषयक संक्षिप्त स्तोत्रों के समान है। शिवगीता, गणेशगीता और सूर्यगीता ऐसी नहीं है। यद्यपि इनमें ज्ञान और कर्म के समुच्चय का युक्तियुक्त समर्थन अवश्य किया गया है, तथापि इसमें नवीनता कुछ भी नहीं है, क्योंकि यह विषय प्रायः भगवद्गीता से ही लिया गया है। इन कारणों से भगवद्गीता के प्रगल्भ तथा व्यापक तेज के सामने बाद की बनी हुई कोई भी पौराणिक गीता ठहर नहीं सकी, और इन नकली गीताओं से उलटे भगवद्गीता का ही महत्त्व अधिक बढ़ गया है। यही कारण है कि 'भगवद्गीता' का 'गीता' नाम प्रचलित हो गया है। अध्यात्म रामायण और योगवासिष्ठ यद्यपि

विस्तृत ग्रंथ हैं तो भी वे बाद में बने हैं। यह बात उनकी रचना से ही स्पष्ट हो जाती है। मद्रास का 'गुरूज्ञानवासिष्ठ तत्त्वसारायण' नामक ग्रंथ कई विद्वानों के मतानुसार बहुत प्राचीन है। वस्तुतः ऐसा नहीं है क्योंकि उसमें 108 उपनिषदों का उल्लेख है जिनकी प्राचीनता सिद्ध नहीं हो सकती। ''सूर्यगीता में विशिष्ट द्वैत का मत उल्लेख पाया जाता है, और अनेक स्थानों में भगवद्गीता ही का युक्तिवाद लिया हुआ सा जान पड़ता है। इसलिए यह ग्रंथ भी बहुत पीछे से श्रीशंकराचार्य के भी बाद बनाया गया होगा।

अनेक गीताओं के होने पर भी भगवद्गीता की श्रेष्टता निर्विवाद् सिद्ध है। इस कारण उत्तरकालीन वैदिकधर्मीय पंडितों ने, अन्य गीताओं पर अधिक ध्यान नहीं दिया। भगवद्गीता को ही परीक्षा करने और उसी का तात्पर्य अपने बंधुओं को समझा देने में अपनी कृतकृत्यता मानने लगे। ग्रंथ की दो प्रकार से परीक्षा की जाती है। एक अंतरंग–परीक्षा और दूसरी बहिरंग परीक्षा कहलाती है। पूरे ग्रंथ को देखकर उसके मर्म, रहस्य मथितार्थ और प्रमेय ढूँढ़ निकालना 'अन्तरंग–परीक्षा' है। ग्रंथ को किसने और कब बनाया, उसकी भाषा सरस है या निरस, काव्य–दृष्टि से उसमें माधुर्य और प्रसाद गुण हैं या नहीं, शब्दों की रचना में व्याकरण पर ध्यान दिया गया है या उस ग्रंथ में अनेक आर्ष प्रयोग हैं, उसमें किन–किन मतों–स्थलों और व्यक्तियों का उल्लेख है, इन बातों से ग्रंथ के कालनिर्णय और तत्कालीन समाजस्थिति का कुछ पता चलता है या नहीं, ग्रंथ के विचार स्वतंत्र हैं अथवा चुराये हुए हैं, यदि उसमें दूसरों के विचार भरे हैं तो वे कौन से हैं और कहाँ से लिए गये हैं, इत्यादि बातों के विवेचन को 'वहिरंग–परीक्षा' कहते हैं। जिन प्राचीन पंडितों ने गीता पर टीका और भाष्य लिखे हैं उन्होंने उक्त बाहरी बातों पर अधिक ध्यान नहीं दिया। इसका कारण यह है कि वे लोग भगवद्गीता सरीखे अलौकिक ग्रंथ की परीक्षा करते समय उक्त बाहरी बातों पर ध्यान देने को ऐसा ही समझते थे जैसे कि कोई मनुष्य एक–आध उत्तम सुगंधयुक्त फूल को पाकर उसके रंग, सौन्दर्य, सुवास आदि के विषय में कुछ भी विचार न करे और केवल उसकी पँखुरियाँ गिनता रहे अथवा जैसे कोई मनुष्य मधुमक्खी का मधुयुक्त छत्ता पाकर केवल उसके छिद्रों को गिनने में ही समय नष्ट कर दे। परन्तु अब पश्चिमी विद्वानों के अनुकरण से हमारे आधुनिक विद्वान लोग गीता की वाह्य–परीक्षा भी करने लगे हैं। गीता के आर्ष प्रयोगों को देखकर एक ने यह निश्चित किया है कि ग्रंथ ईसा से कई शतक पहले बन गया होगा। इससे यह शंका बिल्कुल ही निर्मूल हो जाता है कि गीता का भक्तिमार्ग उस ईसाई धर्म से लिया गया होगा, जो गीता के बहुत पीछे प्रचलित हुआ है। गीता के सोलहवें अध्याय में जिस नास्तिक मत का उल्लेख है उसे बौद्धमत समझकर दूसरे ने गीता का रचना काल बुद्ध के बाद माना है। तीसरे विद्वान का कथन है कि तेरहवें अध्याय में ''ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव'' श्लोक में ब्रह्मसूत्र का उल्लेख होने के कारण गीता ब्रह्मसूत्र के बाद बनी होगी। इसके विरूद्ध कई लोग कहते हैं, कि ब्रह्मसूत्र में अनेक स्थानों पर गीता ही का आधार लिया गया है, जिससे उसके बाद बनना सिद्ध नहीं होता। कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि महाभारत युद्ध में रणभूमि पर अर्जुन को सात सौ श्लोकों की गीता सुनने का समय मिलना सम्भव नहीं है। हाँ यह सम्भव है कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को लड़ाई की जल्दी में दस–बीस श्लोक या उनका भावार्थ सुना दिया हो और उन्हीं श्लोक के विस्तार को संजय ने धृतराष्ट्र से, व्यास ने शुक से, वैशंपायन ने जनमेजय से और सूत ने शौनक से कहा हो, अथवा महाभारतकार ने भी उसको विस्तृत रीति से लिख दिया हो। ''गीता की रचना के सम्बन्ध में मन की ऐसी प्रवृति होने पर गीता–सागर में डुबकियाँ लगाकर किसी ने सात, किसी ने अट्ठाईस, किसी ने छत्तीस और किसी ने सौ, इस तरह गीता के मूल श्लोक खोज निकाले हैं।'' ''कईयों ने तो यहाँ तक कहते हैं कि अर्जुन को रणभूमि पर गीता का ब्रह्मज्ञान बतलाने की आवश्यकता ही नहीं थी और वेदान्त विषय का उत्तम ग्रंथ पीछे से महाभारत में जोड़ दिया गया है।''[13] यह नहीं कि वहिरंग–परीक्षा की ये सब बातें सर्वथा निरर्थक हों। उदाहरणार्थ, फूल की पँखुरियों तथा मधु के छते के छिद्रों की बात को लीजिये। वनस्पतियों के वर्गीकरण के समय फूलों की पँखुरियों का भी विचार अवश्य करना पड़ता है। इसी तरह गणित की सहायता से यह सिद्ध किया गया कि मधुमक्खियों का जन्मजात चातुर्य व्यक्त होता है। इसी प्रकार के उपयोगों पर दृष्टि देते हुए गीता की वहिरंग–परीक्षा की गई है, परन्तु जिनको ग्रंथ के रहस्य ही जानना है उनके लिए वहिरंग–परीक्षा के झगड़े में पड़ना अनावश्यक है। वाग्देवी के रहस्य को जानने वालों तथा उसकी ऊपरी और बाहरी बातों के जिज्ञासुओं में जो भेद है उसे मुरारि कवि ने बड़ी ही सरसता के साथ दर्शाया है–

अब्धिर्लंघित एवं वानरभटैः किं त्वस्य गम्भीरताम्।
आपातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचलः।।

अर्थात् समुद्र की अगाध गहराई जानने की यदि इच्छा हो तो किससे पूछा जाये? इसमें सन्देह नहीं, कि राम–रावण–युद्ध के समय सैकड़ों वानरवीर धड़ाधड़ समुद्र के ऊपर से कूदते हुए लंका में चले गये थे, परन्तु उनमें कितनों को समुद्र की गहराई का ज्ञान था? समुद्र–मंथन के समय देवताओं ने मंथनदंड बनकर जिस बड़े भारी पर्वत को नीचे छोड़ दिया था और जो सचमुच समुद्र के नीचे पाताल तक पहुँच गया था, वही मंदराचल पर्वत समुद्र को जान सकता है। मुरारि कवि के इस न्यायानुसार, गीता के रहस्य को जानने के लिए, हमें उन पंडितों और आचार्यों के ग्रथों की ओर ध्यान देना चाहिये, जिन्होंने गीता–सागर का मंथन किया है। इन पंडितों में महाभारत के कर्त्ता ही अग्रगण्य हैं। आजकल जो गीता प्रसिद्ध है, उसके ये ही एक प्रकार से कर्त्ता भी कहे जा सकते हैं। इसलिये प्रथम उन्हीं के मतानुसार संक्षेप में गीता का तात्पर्य इस प्रकार है।

सारांश –

सारांश यह है कि गीता का योग प्रवृति और निवृत्ति दोनों का पोषक है किन्तु इसमें परिष्कार अपेक्षित है। यह परिष्कार प्रवृत्ति में त्याग एवं निवृत्ति में अनासक्ति है। कर्म से फल की इच्छा न करना प्रवृत्ति में त्याग का आदर्श है। निराहार व्यक्ति की भोजन में आसक्ति न होना निवृत्ति में अनासक्ति है। इस प्रकार गीता के 'योग' में प्रवृत्ति और निवृत्ति

International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
Multidisciplinary, Indexed, Double-Blind, Open Access, Peer-Reviewed, Refereed-International Journal, Impact factor (SJIF) = 7.938

दोनों का समन्वय है। इसमें त्यागमय जीवन की महत्ता है क्योंकि त्याग से शान्ति प्राप्त होती है। गीता में प्रतिपादित योग 'पतंजलि' के योग के समान चित्त निरोध तक सीमित नहीं है। यहाँ स्पष्ट कहा गया है कि यदि चित्त स्थिर न हो सके, तो अभ्यास करना चाहिए, अभ्यास भी संभव न हो, तो परमात्मा के लिए कार्य करना चाहिए और यह भी न कर सकने की स्थिति में परमात्मायोग के आश्रित हो जाना चाहिए। अतः गीता ने 'योग' का सार्वजनिक एवं सार्वकालिक मार्ग उद्घाटित किया है। इसकी प्राप्ति किसी भी स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति को सुलभ हो सकती है। रणक्षेत्र में अर्जुन को सिद्ध योग का यही संदेह हैं। उनका चित्त एकाग्र होकर युद्धाकार को प्राप्त कर लेता है, जो गीता के संदर्भ में योग है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. चतुर्वेदी, खेमचन्द्र, योग साधना आधुनिक परिप्रेक्ष्य में, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 2007
2. सिंह, प्रो0 रामहर्ष, योग एवं यौगिक चिकित्सा, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पुनर्मुद्रित संस्करण : 2014
3. आचार्य, पद्मश्री डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी, योग और आरोग्य (साधना और सिद्धि), विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, द्वितीय संस्करण : 2012
4. सम्पूर्णानन्द, डॉ0 योग दर्शन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण : 1965
5. जोशी, कृष्णकान्त, श्रीमद्भागवत पुराण में भक्ति रस का शास्त्रीय निरुपण, प्रतिभा प्रकाशन, शक्तिनगर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2005
6. विवेकानन्द, स्वामी, ध्यान तथा इसकी पद्धतियाँ, स्वामी ब्रह्मस्थानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर, प्रथम संस्करण : 2004

iajesm
Quality Of Work... Never Ended...